''औपनिवेशिक भारत में प्रेस और राष्ट्रवाद''

श्रवण कुमार ठाकुर*

सार–संक्षेप–19वीं सदी के नवोत्थान के पूर्व लोग वर्तमान समय के तूफानों और उलटफेर से बेखबर, गुजरे हुए मृत लोंगों की जिन्दगी बिता रहे थे जिसमें कोई उत्साह, उमंग और कशमकश नहीं थी। सर्वत्र संतोष, शान्ति, निराशा और बेबसी की भावना व्याप्त थी। सर्वत्र जिन्दगी की, समाज की, समस्त ताकत, आशा, आकांक्षा का सारपूर्ण अंश चुक गया था। समाज की सभी क्रियाएँ एक पंगु, बंधी–बँधायी लीक पर आकर थम गयी थी। किन्तु 19वीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य एवं पत्रकारिता ने पराधीन भारतीय जीवन की सम्पूर्ण चिन्तन धारा का रुख ही बदल दिया तथा लोग क्रांतिकारी परिवर्तनों और नवोत्थान की तेज लहर के वशीभूत होते जा रहे थे। उस समय भारत एक आमूल चूल औपनिवेशिक क्रान्ति के दौर से गुजर रहा था। विदेशी शिक्षा संस्कृति तथा ब्रिटिश हित पोषक साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था के गहरे आघात ने भारतीय जनमूल्यों, सामन्ती परिवेश और सामाजिक विसंगतियों पर गहरे प्रश्न चिह्न लगा दिये थे। राष्ट्रवाद से लोकमानस की जड़ता टूटी थी। उन्हें इस प्रहार ने आत्म विश्लेषण और वैचारिक आत्ममंथन के लिए प्रेरित किया था। तीव्रगति से बदलते इतिहास से दिग्भ्रमित जनसमुदाय को नये सोच, नये आत्माभिमान और नये ज्ञान की ज्योति से सही मार्ग सुझाया था।

परिचय–भारत में राष्ट्रवाद के उदय की प्रक्रिया अत्यंत जटिल एवं बहुमुखी रही है। कुछ लोग भारतीय राष्ट्रवाद को एक आधुनिक तत्व मानते है। भारत में राष्ट्रवाद के विचार का मूल केन्द्र भारत के लोग और उनकी प्राचीन संस्कृति है। जब भारतीय संस्कृति की बात आती हैं तब पश्चिम के कई विद्वान इस व्याख्या को भूल कर यह मानने लगते है कि ब्रिटिश लोगों के कारण ही भारत में राष्ट्रवाद की भावना ने जन्म लिया। राष्ट्रीयता की चेतना ब्रिटिश शासन की देन है और उससे पहले भारतीय इस चेतना से अनभिज्ञ थे परन्तु यह शायद सत्य नहीं है। भारतीय राष्ट्रवाद को उभारने में यहाँ के प्रेस की भूमिका का भी योगदान काफी रहा है। भारत में अंगेजों के शासन काल में राष्ट्रीयता की भावना का विशेष रूप से विकास हुआ जिसका मुख्य कारण भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार था। यहाँ

***पिता– श्री राजेन्द्र ठाकुर, ग्राम–नारायणपुर, पो.–कोठिया, जिला–मधुबनी (बिहार)**

के लोगों में पाश्चात्य देशों का इतिहास पढ़कर राष्ट्रवादी भावना का विकास हुआ। इसका तात्पर्य यह नहीं हैं कि भारत के प्राचीन इतिहास से नई पीढ़ी को राष्ट्रवादी प्रेरणा नहीं मिली है। भारत में राष्ट्रवाद का उदय और विकास उन परिस्थितियों में हुआ जब राष्ट्रवाद के मार्ग में सहायता करने के स्थान पर बाधाएँ उत्पन्न हो रही थीं। जिसका मुख्य कारण था भारत की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचना एवं देश का विशाल आकार।

राष्ट्रवाद का प्रधान लक्षण अतीत की गहराइयों का अनुसंधान है। प्रत्येक राष्ट्र की जीवन धारा में ज्वार–भाटे की तरह उत्थान–पतन, पुनरुत्थान का अनवरत क्रम चलता रहता है। विकट अन्धकार के पश्चात पौ फटती आशा की किरण, मृत होते समाज में उसका पुनर्जीवन, हर ठहराव–टूटन, अवरोध के बाद चमत्कारिक आत्मविश्वास और जीवन्त स्फूर्ति की अलौकिक लहर को बार–बार भारतीय इतिहास में देखा जा सकता है। कभी हिन्दुस्तानी जिन्दगी की धार मंद पड़ जाती है, मुर्दा, सदियों के बोझ को जैसे–तैसे ढोते हुए लोग, मानों गुजरे जमाने में ही रहते हैं। उन पर एक तरह की बेहोशी छा जाती है, किन्तु समय–समय पर राष्ट्रवाद का भाव ही लोगों में जागरण पैदा करके देश पर मर मिटने की प्रेरणा देता है। वास्तव में भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की कहानी, भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की कहानी है। सुशासन से स्वशासन, स्वराज्य से पूर्ण स्वंतत्रता की यात्रा क्रमशः विकसित राजनीतिक चेतना के प्रस्फुटन का इतिहास है। राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि राष्ट्रीयता की भावना भारत में प्रारम्भ से ही रही है। "भारतीय राष्ट्रीयता को किसी आंग्ल इतिहासकार अथवा राजनीतिक चिंतक के प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं हुई। अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के उत्कर्ष के दिनों में भारत को एक राष्ट्र तथा एक पृथक भौगोलिक अस्तित्व की गरिमा प्राप्त थी। भारत में राष्ट्रवाद का आधुनिक स्वरूप अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत बौद्धिक पुनर्जागरण एवं दासता से मुक्ति के प्रयास में परिलक्षित होता है। भारतीय पुनर्जागरण के नैतिक एवं आध्यात्मिक सन्दर्भों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य शिक्षा, अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों तथा ईसाई धर्म के भारतीय पुनर्जागरण तथा सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन पर पड़ने वाले प्रभावों को बहुत बढ़ा–चढ़ा कर बताया गया है। पाश्चात्य प्रभाव को मानने से अस्वीकृति नहीं है, किन्तु भारतीय चिन्तकों का एक बहुत बड़ा समुदाय, भारतीय संस्कृति, धर्मचेतना एवं भारतीय आधारों पर ही आगे बढ़ना श्रेयस्कर मानता रहा है। भारत का बौद्धिक पुनर्जागरण आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का महत्वपूर्ण कारण था। जिस प्रकार इटली के पुनर्जागरण तथा जर्मनी के धर्मसुधार आन्दोलन ने यूरोपीय राष्ट्रवाद के उदय के लिए बौद्धिक आधार पर काम

किया था, उसी प्रकार भारत के सुधारकों तथा धार्मिक नेताओं के उपदेशों ने देशवासियों में स्वतंत्र तथा आत्मनिर्णय पर आधारित राजनीतिक जीवन का निर्माण करने की इच्छा उत्पन्न की। भारतीय आत्मा के जागरण की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति सर्वप्रथम दर्शन, धर्म तथा संस्कृति के क्षेत्रों में उत्पन्न हुई और राजनीतिक आत्मचेतना का उदय उसके अपरिहार्य परिणाम के रूप में हुआ। भारतीय राष्ट्रवाद के मूल में तत्वतः नैतिक और आध्यात्मिक आकांक्षाओं की प्रधानता थी। भारतीय राष्ट्रवाद में अतीत को पुनर्जीवित करने की प्रवृत्ति अधिक बलवती थी। भारतीय राष्ट्रवाद के कुछ नेताओं ने खुले रूप में इस बात का समर्थन किया कि हमें जानबूझकर वेदों, उपनिषदों, गीता, पुराणों आदि प्राचीन धर्मशास्त्रों के आधार पर अपने वर्तमान जीवन को ढालना चाहिए। उन्होंने उन भारतीयों की निन्दा की जो डार्विन, हक्सले, मिल और स्पेंसर के विचारों से प्रभावित थे तथा जिनका जीवन दर्शन आध्यात्मिकता तथा राष्ट्रप्रेम से पूर्णतः शून्य हो गया था। अतीत को पुनर्जीवित करने की यह भावना आक्रामक तथा अहंकारपूर्ण विदेशी सभ्यता की महान चुनौती के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हुई थी। पश्चिम की यांत्रिक सभ्यता तथा भारत की धार्मिक तथा पुण्योन्मुखी संस्कृतियों के बीच इस संघर्ष से नये भारत का उदय हुआ। प्राचीन ग्रन्थों का नये मानवतावादी तथा सर्वराष्ट्रवादी दृष्टिकोण से विवेचन किया जाने लगा जो वास्तव में राष्ट्रवाद ही था।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से राष्ट्रवाद एक मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक विचार है। राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए एकता का आधार प्राप्त होना आवश्यक है। भाषा, जाति, धर्म, संस्कृति, समान ऐतिहासिक धरोहर, भौगोलिक एकता तथा आर्थिक हित आदि ऐसे कई तत्व हैं जिनकी सहायता से राष्ट्रवाद का विचार आता है और अंत में राष्ट्रवाद की भावना उत्पन्न होती है। एक बार इस भावना के उत्पन्न होने के बाद फिर यह निरन्तर बलवती होती जाती है और वह राष्ट्र स्वतंत्रता प्राप्त करता है और उसे बनाये रखने के लिए फिर वह तन, मन, धन से राष्ट्र पर प्राणोत्सर्ग करने के लिए निरन्तर तत्पर रहता है। अवधारणात्मक दृष्टिकोण से राष्ट्रवाद के विविध रूप आधुनिक भारतीय चिन्तन में प्रकट हुए हैं। भारत में राष्ट्रवाद को राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से महत्व देने वाले अनेक विचार हैं, किन्तु राष्ट्रवाद को आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान करने वाले विचारकों ने राष्ट्रवाद को एक नवीन दिशा दी है जो कि भारतीय चिन्तन की मौलिक प्रवृत्ति की परिचायक मानी जा सकती हैं। स्वामी विवेकानन्द, विपिन चन्द्र पाल तथा अरविन्द घोष का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद एक नवीन अनुभूति है। पाश्चात्य राष्ट्रवादी चिन्तन की संकीर्णता को भारत ने ग्रहण नहीं किया, वरन विश्वबन्धुत्व तथा सर्वहितकारी प्रयोजनों के प्राचीन भारतीय आदर्श ने राष्ट्रवाद को अन्तर्राष्ट्रीयता का बाधक न

बनाकर उसका सहयोगी बना दिया है। एक ओर जहाँ राष्ट्रवाद को आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक तथा धार्मिक आधारों पर प्रकल्पित किया गया, वहीं दूसरी ओर स्वराज्य प्राप्ति को अपना प्रधान लक्ष्य घोषित किया गया है, जिससे राष्ट्रवाद अपने यौवन का पूर्ण विकास कर सके।

भारतीय बौद्धिक पुनर्जागरण में राष्ट्रवाद के पूर्ण दर्शन दयानन्द सरस्वती के विचारों में होते हैं। जैसा कि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने लिखा है–" आधुनिक भारत में, राष्ट्रवाद एवं वैदिक पुनरुत्थानवाद, बुद्धिवाद तथा समाज सुधारवाद के प्रणेता स्वामी दयानन्द सरस्वती ने देश की पतनावस्था से उत्पन्न पंथों और परिपाटियों की व्याकुल करने वाली उलझनों को साफ करके एक मार्ग बना दिया, जिस पर चलकर हिन्दू ईश्वर भक्ति और मानव सेवा के सरल तथा विवेकपूर्ण जीवन को प्राप्त कर सकते थे। उन्होंने निर्मल दृष्टि से सत्य का दर्शन करके तथा दृढ़ संकल्प और साहस के साथ हमारे आत्मसम्मान तथा सशक्त बौद्धिक जागरण के लिए कार्य किया। वे ऐसा बौद्धिक जागरण चाहते थे जो आधुनिक युग की प्रगतिशील भावना के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके और साथ ही साथ देश के लिए गौरवशाली अतीत के साथ अटूट सम्बन्ध कायम रख सके, जिसे भारत ने अपने व्यक्तित्व को कार्य तथा चिन्तन की स्वतंत्रता में और आध्यात्मिक साक्षात्कार के निर्मल प्रकाश के रूप में व्यक्त किया था।''

दयानन्द सरस्वती राष्ट्रवाद के पतन के लिए भारतीय चरित्र की दुर्बलताओं को जैसे उदासीनता, निष्क्रियता, प्रमाद, आलस्य तथा भाग्यार्पण को उत्तरदायी मानते थे। पारस्परिक फूट, धार्मिक विभेद जीवन में शुद्धता का अभाव, शिक्षा की कभी, इन्द्रिय परायणता, असत्यता एवं अन्य बुरी आदतें, वेदाध्ययन की अवहेलना राष्ट्रवाद को खण्डित करती हैं। कर्म की सफलता के लिए आदर्श का होना आवश्यक है। उनका कथन था "कि जो पक्षपात रहित हो, जो न्याय और समता की शिक्षा देता हो, जो मन, वचन और कर्म की सत्यता सिखाता हो, उसी को मैं धर्म मानता हूँ। वे चाहते थे कि उनका क्रियाशील तथा शक्तिशाली अध्यात्मवाद का कार्यक्रम भारत में तथा सम्पूर्ण विश्व में फैले। उनके वैदिक पुनर्जागरण के आदर्श ने भारतीयों के नैतिक तथा सामाजिक एवं राष्ट्रीय पुनरुत्थान पर बल दिया। दयानन्द की योजना में राष्ट्रीय पुनरुद्धार तथा मुक्ति के लिए चरित्र की शुद्धता अपरिहार्य थी। उसके बिना राष्ट्रवाद की भावना लोगों में अपना स्थान नहीं बना सकती। दयानन्द भारत को आर्यावर्त कहा करते थे तथा यह देश पारसमणि का देश स्वर्णभूमि था। भारत में अखण्ड, स्वतंत्र, स्वाधीन तथा निर्भय शासन के अभाव को देखकर दुःखी हुआ करते थे तथा विदेशी प्रभावों के विरुद्ध प्रतिरोध के लिए संगठित करने की अपील भारतवासियों से किया करते थे। राष्ट्रवाद के सन्देश

वाहक के रूप में उनका स्थान इसी से स्पष्ट है कि उन्होंने गौरवपूर्ण अतीत से प्रेरणा लेकर स्वराज्य का शक्तिशाली नारा लगाया और बताया कि विदेशी शासन जनता को पूर्णरूप से सुखी कभी नहीं बना सकता, वह कितना ही अच्छा क्यों न हो; क्योंकि सुशासन स्वशासन का स्थान कभी नहीं ले सकता है।"

यदि किसी राष्ट्र की सरकार, भूमि आदि नष्ट हो जाये तो भी अपने धर्म के सहारे वह राष्ट्र जीवित रह सकता है जैसा कि यहूदियों के सम्बन्ध में हुआ था। जब किसी राष्ट्र के साथ निश्चित भूमि और सरकार का संयोग हो जाता है तो वह राज्य का रूप फिर धारण कर लेता है। विश्व में अनेक सभ्यताओं का उदय हुआ, किन्तु कालान्तर में वे भूमिसात हो गयीं। किन्तु भारत अपने राष्ट्रवाद के धार्मिक स्रोतों के प्रति वफादार बना रहा, इसलिए उसकी प्राणशक्ति अक्षुण्ण रही और वह अपनी खोयी हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के योग्य बना रहा। यह कहना मूर्खतापूर्ण एवं बेहूदा है कि भारत में राष्ट्रीयता की भावना का उदय ब्रिटिश शासन का परिणाम है। इस कथन में गहराई नहीं हैं कि राष्ट्रत्व नस्ल की एकता और भाषा की एकता पर निर्भर होता है। राष्ट्रत्व एक आध्यात्मिक वस्तु है। राष्ट्र की प्राणशक्ति और पूर्णता का सार आकांक्षाओं की एकता में है, न कि मत की एकता में। जहाँ एक विशाल जनसमुदाय उत्कृष्ट सार्वजनिक उद्देश्य से अनुप्रेरित होता है, वहाँ राष्ट्रीय एकता अनिवार्यतः आ जाती है। व्यक्ति की भांति राष्ट्र भी एक ऐसे जटिल शरीर के निर्माण की प्रक्रिया है, जिसमें एक श्रेष्ठ प्रकार का जीवन, ईश्वरीय जीवन निवास करता है। राष्ट्र एक उच्चत्तर कोटि का व्यक्ति है। राष्ट्र की आत्मा ईश्वर का अंश है, वह सीधी ईश्वर से आती हैं और अंश में जो विशिष्ट गुण पिंडीभूत होते हैं, उन्हीं के अनुरूप उनसे निर्मित राष्ट्र की चारित्रिक विशेषताएँ हुआ करती हैं। राष्ट्र में मानवता प्रतिबिम्बित होती है क्योंकि वह मानव का समग्र रूप है। यह मानवता आध्यात्मिक सूत्रों में ही उचित प्रकार से बंधती है। भारत का आध्यात्मिक अतीत इस धार्मिक महत्ता के माध्यम से भारत को पुरातन राष्ट्र सिद्ध करता है और भारत की आध्यात्मिकता एवं प्राचीनता ही विश्व का परित्राण करेगी। अनेकों इतिहासकारों ने राष्ट्रवाद के उस भौतिक सिद्धान्त का खण्डन किया जो उसे पूंजीवाद की एक गौण और विकृत उपज मानता है। वे राष्ट्र को एक गम्भीर आंतरिक जीवन से स्पन्दित आध्यात्मिक सत्ता मानती थी। उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद की जड़ें भारत के प्राचीन साहित्य और उस साहित्य में साकार हुए अतीत में ढूँढ़ निकाली थी। राष्ट्र का जादू उसकी एकता की भावना है और राष्ट्र का प्रयोजन अपनी जातीय विशेषताओं के अनुरूप विशिष्ट पद्धति से विश्व की सेवा करना है। राष्ट्र को दैवी अभिव्यक्ति का साधन मानते थे और राष्ट्रवाद के आध्यात्मिक सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया था।

निष्कर्ष–अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 19वीं सदी के पूर्वार्ध में पत्रकारिता अपने बचपन में थी। बहुत से पत्र निकले, पर अधिकांश थोड़े दिन जीकर मर गए, उनकी ग्राहक संख्या बहुत थोड़ी थी और आकार में भी वे अधिकांश चार पृष्ठों के साप्ताहिक ही होते थे। इस बीच अंग्रेजी शिक्षा का विस्तार होता रहा, जो मध्यम वर्ग के विस्तार का एक चिह्न था। विद्यालयों और कॉलेजों की संख्या बढ़ती जा रही थी और तीन विश्वविद्यालय चलने लगे थे, जिनकी संख्या 1887 में पाँच हो गई। समाज में धार्मिक तथा सामाजिक सुधार के आन्दोलनों से काफी उबाल आ रहा था और सुधार तथा परम्परावादियों में होने वाले वाद–विवाद से काफी सनसनी थी। राजनैतिक जीवन का जहाँ तक सम्बन्ध है, 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम और उसके बाद की भंयकर घटनाओं से बंगाल बचा हुआ था, पर सरकारी अफसरों का बदला हुआ रुख, देहातों में बढ़ता हुआ आर्थिक कष्ट, बराबर पड़ने वाले दुर्भिक्ष और सरकारी कार्यों में भारतीय को कोई भाग न दिया जाना, ये कारण थे जिन से लोगों में असन्तोष बढ़ रहा था। भारतीय लोग विदेशों की घटनाओं में विशेष दिलचस्पी ले रहे थे, जैसे जर्मनी और इटली का एकीकरण और मुक्ति आन्दोलन, आयरलैण्ड में स्वशासन आन्दोलन, अफ्रीका का बाँटा जाना। एशिया महाद्वीप में चीन और साथ ही साथ दक्षिण–पूर्वी, पश्चिमी और मध्य एशियाई देशों में पाश्चात्य साम्राज्यवाद का खतरा छाया हुआ था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ए0आर0देसाई : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, सरस्वती मंदिर, काशी, 1991, पृ0सं0–1–2
2. के0 पी0 जायसवाल : दयानन्द कोमेमोरेशन, लीडर प्रेस, प्रयाग, 1933, पृ0सं0–162–163
3. मधु लिमये : स्वतंत्रता आन्दोलन की विचारधारा, ज्ञानमंडल प्रकाश, दिल्ली, 1983, पृ0सं0–50
4. मोहम्मद नोमान : मुस्लिम इण्डिया, साहित्य सागर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1944, पृ0सं0–280
5. मौलाना आजाद : खुदवात–ए–आजाद, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ0सं0–298
6. मुंशी मुस्ताक अहमद : मजामीन मौलाना आजाद, अभिनव भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1995, पृ0सं0–98

****